क्रांतिधर्मी साहित्य - युग साहित्य - इक्कीसवीं सदी का मार्गदर्शक साहित्य

क्रान्तिधर्मी साहित्य-युग साहित्य नाम से विख्यात यह पुस्तकमाला युगद्रष्टा-युगसृजेता प्रज्ञापुरुष पं.श्रीराम शर्मा आचार्य जी द्वारा १९८९-९० में महाप्रयाण के एक वर्ष पूर्व की अवधि में एक ही प्रवाह में लिखी गयी है। प्रायः २० छोटी-छोटी पुस्तिकाओं में प्रस्तुत इस साहित्य के विषय में स्वयं हमारे आराध्य प.पू. गुरुदेव पं.श्रीराम शर्मा आचार्य जी का कहना था-"हमारे ये विचार, क्रान्ति के बीज हैं। ये थोड़े भी दुनियाँ में फैल गए, तो अगले दिनों धमाका कर देंगे। सारे विश्व का नक्शा बदल देंगे।....मेरे अभी तक के सारे साहित्य का सार हैं।.... सारे जीवन का लेखा-जोखा हैं।.... जीवन और चिंतन को बदलने के सूत्र हैं इनमें।.... हमारे उत्तराधिकारियों के लिए वसीयत हैं।.... अभी तक का साहित्य पढ़ पाओ या न पढ़ पाओ, इसे जरूर पढ़ना। इन्हें समझे बिना भगवान के इस मिशन को न तो तुम समझ सकते हो, न ही किसी को समझा सकते हो।.... प्रत्येक कार्यकर्त्ता को नियमित रूप से इसे पढ़ना और जीवन में उतारना युग-निर्माण के लिए जरूरी है। तभी अगले चरण में वे प्रवेश कर सकेंगे।.... यह इस युग की गीता है। एक बार पढ़ने से न समझ आए तो सौ बार पढ़ना और सौ लोगों को पढ़ाना। उनसे भी कहना कि आगे वे १०० लोगों को पढ़ाएँ। हम लिखें तो असर न हो, ऐसा हो ही नहीं सकता। जैसे अर्जुन का मोह गीता से भंग हुआ था, वैसे ही तुम्हारा मोह इस युग-गीता से भंग होगा।.... मेरे जीवन भर का साहित्य इस शरीर के वजन से भी ज्यादा भारी है। यदि मेरे जीवन भर के साहित्य को तराजू के एक पलड़े पर रखें और क्रांतिधर्मी साहित्य को दूसरे पलड़े पर, तो इनका वजन ज्यादा होगा।.... महाकाल ने स्वयं मेरी उँगलियाँ पकड़कर ये साहित्य लिखवाया है।.... इन्हें लागत मूल्य पर छपवाकर प्रचारित-प्रसारित (शब्दशः-अक्षरशः) करने की सभी को छूट है, कोई कापीराइट नहीं है।....मेरे ज्ञान शरीर को मेरे क्रान्तिधर्मी साहित्य के रूप में जन-जन तक पहुँचाने का प्रयास करें।".....

नवसृजन के निमित्त महाकाल की तैयारी

लेखक

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रकाशक

युग निर्माण योजना

गायत्री तपोभूमि, मथुरा

सार-संक्षेप

अशुभ समय संसार के इतिहास में अनेक बार आते रहे हैं, पर स्रष्टा का यह नियम है कि वह अनौचित्य को सीमा से बाहर बढ़ने नहीं देता । स्रष्टा का आक्रोश तब उभरता है, जब अनाचारी अपनी गतिविधियाँ नहीं छोड़ते और पीड़ित व्यक्ति उसे रोकने के लिए कटिबद्ध नहीं होते । 'यदा यदा हि धर्मस्य' वाली प्रतिज्ञा का निर्वाह करने के लिए स्रष्टा वचनबद्ध है ।

युगसंधि के दस वर्ष दोहरी भूमिकाओं से भरे हुए हैं । प्रसव जैसी स्थिति होगी । प्रसवकाल में जहाँ एक ओर प्रसूता को असह्य कष्ट सहना पड़ता है, वहाँ दूसरी ओर संतानप्राप्ति की सुंदर संभावनाएँ भी मन-ही-मन पुलकन उत्पन्न करती रहती हैं । जिसमें मनुष्य शांति और सौजन्य के मार्ग पर चलना सीखे, कर्मफल की सुनिश्चित प्रक्रिया से अवगत हो और वह करे, जो करना चाहिए, उस राह पर चले, जिस पर कि बुद्धिमान् को चलना चाहिए ।

शांतिकुंज से उभर रहे एक छोटे प्रवाह ने नवयुग के अनुरूप प्रशिक्षण की ऐसी व्यवस्था बनाई है, जो कि उसके साधनों को देखते हुए संभव नहीं थी । ऐसी सिद्धांत शैली और तर्क प्रक्रिया शांतिकुंज ने प्रस्तुत की है, जिससे लोकमान्यता में असाधारण परिवर्तन देखे जा सकते हैं । इन दिनों मानव-शरीर में प्रतिभावान् देवदूत प्रकट होने जा रहे हैं । लोकमानस का परिष्कार कर वे नवयुग की संभावना सुनिश्चित करेंगे—निश्चित ही बड़भागी बनेंगे ।

अनौचित्य का प्रतिकार

कभी-कभी ऐसा समय आता है कि छूत की बीमारी की तरह अनाचार भी गति पकड़ लेता है और अपने आप अमरबेल की तरह बढ़ने लगता है । अपनी निज की जड़ न होने पर भी यह बेल विस्तार पकड़ती जाती है और देखते-देखते किसी भी वृक्ष पर पूरी तरह छा जाती है । वनस्पतियों पर चिपकने वाले कीड़े भी बिना किसी दूसरे की सहायता के अपनी वंश-वृद्धि करते रहते हैं और उन्हें नष्ट कर डालते हैं ।

दुष्ट-चिंतन और भ्रष्ट आचरण इन दिनों एक प्रकार से प्रचलन जैसा बन गया है । पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण-शक्ति हर वस्तु को नीचे की ओर ही खींचती है । पानी भी बिना किसी प्रयत्न के नीचे की ओर ही गति पकड़ता है । दुष्टता की प्रवृत्ति भी ऐसी ही है । वह पतन और पराभव की दिशा ही पकड़ती है; जबकि किसी को ऊँचा उठाने के लिए असाधारण कष्टसाध्य परिश्रम करना पड़ता है ।

उदाहरण के लिए रावण जन्मा तो अकेला ही था । उसके बेटे-पोतों ने ही नहीं, वंशजों और प्रजाजनों ने भी वही रीति-नीति अपना ली थी । सर्वत्र अनाचार ही फैल गया था । कंस, जरासंध, वृत्रासुर, महिषासुर आदि ने भी अपने-अपने समय में ऐसे ही विस्तार-क्रम अपनाए थे और अनाचार की सब ओर भरमार दीख पड़ने लगी थी । ऐसे अशुभ समय संसार के इतिहास में अनेक बार आते रहे हैं, पर स्रष्टा की नियति यह है कि अनौचित्य को सीमा से बाहर नहीं बढ़ने देती । छोटे बच्चे जब तक सीमित गलती करते हैं, तब तक अभिभावक उन्हें छूट देते रहते हैं, पर जब वे मर्यादाओं का उल्लंघन करके अवांछनीयता तक अपनाने लगते हैं, तब उनके गाल पर चपत लगाने और कान उमेठे जाने का प्रतिकार भी किया जाने लगता है । यदि ऐसा न होता तो उद्दंडता

पिछले दो हजार वर्ष ऐसे बीते हैं, जिनमें अनीति और अनाचार ने अपनी सभी मर्यादाओं का उल्लंघन किया है; समर्थों ने असमर्थों को त्रास देने में कोई कसर नहीं छोड़ी । सामंतवादी युग के नाम से इसी को अंधकारकाल कहा जाता रहा है । समर्थ लोगों ने गिरोहबद्ध होकर अपनी संयुक्त शक्ति का दुरुपयोग करने में कहीं कोई कसर नहीं रहने दी । इस अवधि में पीड़ितों ने भी मानवीय मर्यादा के अनुरूप कोई प्रतिरोध नहीं किया । कष्ट सहना ही है तो दूसरों का न सही, अपना खून तो बहा ही सकते हैं—संकटों से जूझने की मनुष्य की यह शाश्वत सामर्थ्य ही उसकी विशिष्टता रही है । मनुष्य वस्तुतः ऐसी मिट्टी से बना है कि वह अनीति से जीत भले ही न सके, पर उससे टक्कर तो ले ही सकता है । अनीति को निर्बाध चलने देने या उसे सहते रहने के स्थान पर उससे टकराते हुए मानवीय गरिमा को जगाना भी तो जरूरी है ।

जब अनाचारी अपनी दुष्टता से बाज नहीं आते और सताए जाने वाले कायरता-भीरुता अपनाकर टकराने की नीति नहीं अपनाते तो उसे भी बुरा लगता है, जिसने इस सृष्टि का सृजन किया है । स्रष्टा का आक्रोश तब उभरता है, जब अनाचारी अपनी गतिविधियाँ छोड़ते नहीं और पीड़ित व्यक्ति उसे रोकने के लिए कटिबद्ध होते नहीं । संसार में अनाचार का अस्तित्व तो है, पर उसके साथ ही यह विधान भी है कि सताए जाने वाले बिना हार-जीत का विचार किए प्रतिकार के लिए—प्रतिरोध के लिए तो तैयार रहें ही । दया, क्षमा आदि के नाम से अनीति को बढ़ावा देते चलना सदा से अवांछनीय समझा जाता रहा है । अनीति के प्रतिकार को मानवीय गरिमा के साथ जोड़ा जाता रहा है ।

जब गलतियाँ दोनों ओर से होती हैं तो अपनी व्यवस्था को लड़खड़ाते देखकर स्रष्टा को भी क्रोध आता है और जो मनुष्य नहीं कर पाता, उसे

हैं । जब भी ऐसे समय आए हैं, स्रष्टा ने अपने हाथ में बागडोर सँभाली है और असंतुलन को संतुलन में बदलने का प्रयत्न किया है । 'यदा-यदा हि धर्मस्य' वाली प्रतिज्ञा का निर्वाह करने के लिए वह वचनबद्ध है । उसने समय-समय पर अपने आश्वासन का निर्वाह भी किया है ।

अपने समय को 'प्रगति का युग' कहा जाता है । इन दिनों ज्ञान और विज्ञान का असाधारण विकास-विस्तार हुआ है । इसके साथ ही सुविधा-साधनों की भी अतिशय वृद्धि हुई है । प्राचीनकाल में इतने साधन नहीं थे, फिर भी सर्वसाधारण को चैन के साथ हँसते-हँसाते दिन काटने का अवसर मिल जाता था, पर अब सुविधाओं का कहीं अधिक बाहुल्य होते हुए भी हर व्यक्ति को खिन्न, उद्विग्न और विपन्न देखा जाता है । इसका कारण वस्तुओं की कमी नहीं वरन् यह है कि जो कुछ उपलब्ध है, उसका सदुपयोग बन नहीं पड़ रहा है । बुद्धिमत्ता का वास्तविक स्वरूप यही है कि जो कुछ हस्तगत है, उसका श्रेष्ठतम सदुपयोग बन पड़े । मनुष्य की आवश्यकताएँ सीमित हैं, साथ ही उसकी उत्पादन-शक्ति असाधारण है । इतना सब कुछ होते हुए भी इसे आश्चर्य ही कहना चाहिए कि लोगों में से अधिकांश खिन्न, विपन्न, उद्विग्न पाए जाते हैं । यही अपने समय की सबसे बड़ी गुत्थी है । समाधान इसी का किया जाना चाहिए—अन्यथा समृद्धि के साथ लोगों की विपत्ति भी बढ़ती ही जाएगी ।

ज्ञान और विज्ञान का सदुपयोग इसमें है कि उसे नीतिमत्ता के साथ नियोजित किया जाए सदुपयोग से हर वस्तु सुखद और श्रेयस्कर बन पड़ती है, पर यदि दुर्बुद्धि अपनाकर वस्तुओं का दुरुपयोग किया जाने लगे तो फिर समझना चाहिए कि उसका दुष्परिणाम ही भुगतना पड़ेगा और मनुष्य पुरुषार्थ करते हुए भी असंतुष्ट, अभावग्रस्त और दीन-हीन

अभाव नहीं, उनका दुरुपयोग ही जन-जन को हर दृष्टि से हैरान किए हुए है । यदि मूल कारण को घटाया-हटाया न जा सका तो उन समस्याओं का हल न हो सकेगा, जो हम सबको निरंतर हैरान किए हुए हैं ।

मनुष्य को उसकी सामान्य आवश्यकता से इतनी अधिक सामर्थ्य मिली है कि वह अपनी निजी आवश्यकताओं के अतिरिक्त अपने परिवार, परिकर और संपर्कक्षेत्र की आवश्यकताएँ भी पूरी कर सके; फिर भी होता ठीक उलटा ही देखा गया है—लोग दुःख पाते और दुःख देते पाए जाते हैं । इसका कारण एक ही है—उपलब्धियों का दुरुपयोग होना । हर किसी को समय, श्रम, मनोयोग, कौशल आदि के सहारे बहुत कुछ करने की सामर्थ्य प्राप्त है । फिर भी आश्चर्य यह है कि दूसरों की सहायता तो दूर, अपनी निज की आवश्यकताएँ भी पूरी नहीं हो पातीं ।

भगवान् की नीति जहाँ सौजन्य के प्रति अनुकंपा का प्रदर्शन है, वहाँ दूसरी ओर उद्दंडता के प्रति प्रताड़नापूर्वक व्यवहार भी है । पिछले दो हजारों वर्षों से हर क्षेत्र में उद्दंडता ही बरती गई है । शक्ति की अनावश्यक मात्रा हाथ लगने पर लोग अनाचार की नीति अपनाने लगे हैं । मर्यादाओं को भुला दिया गया और वह करने पर उतारू हो गए, जो नहीं करना चाहिए । ऐसी दशा में जब भर्त्सना से काम नहीं चला तो स्रष्टा ने प्रताड़ना की नीति अपनाई और वह किया, जो उद्दंडों के लिए किया जाना चाहिए ।

दंड भी और प्यार भी

शक्ति का सदुपयोग सज्जनों से ही बन पड़ता है । दुर्जन उसका दुरुपयोग करते ही देखे गए हैं । पिछले दिनों ज्ञान और विज्ञान के जो सूत्र हाथ लगे, उनका अनर्थकारी उपयोग ही किया गया । विज्ञान के

यह सोचा गया कि जितना जल्दी जितना अधिक धन बटोरा जा सके, बटोर लिया जाए । बुद्धि को छल-छद्म में नियोजित किया गया । शक्ति को दुर्बलों के शोषण हेतु नियोजित किया गया । संक्षेप में यही है इन दिनों की उपलब्धियों का उपयोग, जिसे सरल और स्वाभाविक मानकर बिना किसी हिचक के प्रयुक्त किया गया ।

विज्ञान के द्वारा उपलब्ध होती हुई सामर्थ्य का भी इसी प्रकार प्रयोग होता चला गया । प्रतिफल जो होना था, हुआ । सर्वत्र प्रदूषण ने डेरा डाल लिया । शक्तिशाली निर्भय होकर अनाचार बरतने लगे । औचित्य की मर्यादाओं को एक प्रकार से भुला ही दिया गया । यही हैं अपने समय की उपलब्धियाँ, जिन्हें चतुरता का नाम दिया जाता है । जिस रीति-नीति को बहुत जन अपनाते हैं, वह एक प्रकार से प्रथा बन जाती है और प्रचलन का रूप धारण कर लेती है । इन दिनों का प्रचलन यही है । छद्म और अनाचार का उन्मुक्त प्रयोग हो रहा है । नियामक सत्ता के आक्रोश के भय का अंकुश ही उठ गया है ।

यह अनाचार सृष्टिव्यवस्था के सर्वथा प्रतिकूल है । क्रिया की प्रतिक्रिया न हो तो संसार में अंधेर ही मच जाए; न्याय का अस्तित्व ही न रहे; पाप से कोई डरे ही नहीं; अनीतिपूर्वक लूट-मार करने के लिए हर कोई आतुर होने लगे, पर ऐसा होता नहीं । जिसने यह सृष्टि बनाई है, उसने क्रिया की प्रतिक्रिया का नियम भी बनाया है । फलतः अनाचार पर उतारू मनुष्य को औचित्य की प्रताड़ना भी सहनी पड़ी है । पिछली शताब्दी में दो विश्वयुद्ध और लगभग २०० क्षेत्रीय युद्ध हुए हैं, जिनमें ऐसे घातक अस्त्र-शस्त्रों का उपयोग किया गया कि लोगों को अपार धन-जन की हानि उठानी पड़ी । हवा और जल में इतना विष घुल गया कि लोग मुश्किल से ही जीवनयापन कर रहे हैं । अपराधों की बाढ़-सी आई हुई है । शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य गड़बड़ा गया है । हर कोई आशंकित और आतंकित दिखाई देता है । इन परिस्थितियों

में कोई भी चैन से नहीं रह रहा है । अगले दिनों परिस्थितियाँ और भी अधिक बिगड़ने की चेतावनी सभी विज्ञजन दे रहे हैं ।

मनुष्य को सौंपा तो बहुत कुछ गया है, पर इतना नहीं कि वह सृष्टि की व्यवस्था को ही गड़बड़ा कर फेंक दे । उसे संरक्षक, माली और अभिवृद्धि करने वालों की जिम्मेदारियों के साथ भेजा गया है । इसलिए नहीं कि वह इस सुरम्य उद्यान के चलते हुए क्रम को ही उलटकर रख दे ।

जब तक सही चाल, सही गति और सही रीति-नीति को अपनाए रहा गया, तब तक सब कुछ ठीक-ठाक चलता रहा । प्रगति का संतुलन ठीक बना रहा । परिस्थितियाँ सब ओर से ठीक बनी रहीं । ऐसे ही संतुलित अवसर को 'सतयुग' नाम दिया जाता है । मनुष्यों में पारस्परिक स्नेह और सहयोग बने रहने से सभी को पारस्परिक सद्भाव का लाभ मिलता रहा । प्रकृति की अनुकूलता बनी रही । किसी को ऐसे अनिष्ट न सहने पड़े, जो प्रकृति की प्रतिकूलता के कारण उत्पन्न होते हों । सुख-शांति का वातावरण बनाए रहना यहाँ की परंपरा है । जब तक मनुष्य ने अपनी मर्यादाएँ बनाए रखीं, तब तक सब कुंछ सुखद और सुरम्य ही बना रहा ।

इस सृष्टि में जहाँ सदाशयता के उपहार मिलते रहते हैं, वहाँ यह व्यवस्था भी है कि यदि उद्दंडता भरे अनाचार बरते जाने लगें तो तुरंत न सही, कुछ ही विलंब से उनका कडुआ प्रतिफल अवश्य मिलने लगे । लड़के जब अनुशासन बिगाड़ते और स्कूल में अवांछनीय धमा-चौकड़ी मचाते हैं तो शिक्षक को कड़े अनुशासन का प्रयोग कर भय दिखाना पड़ता है । इन दिनों ऐसा ही हो रहा है । व्यक्ति और समाज को खिन्नता और विपन्नता का त्रास भी सहना पड़ रहा है । आपा-धापी की छीना-झपटी में कलह के कारण मनुष्य को जिस सुख-शांति की आवश्यकता है, उसमें भारी कमी पड़ रही है । उद्विग्नता से परेशान

लोग नशेबाजी, विलासिता आदि का आश्रय लेकर ही किसी प्रकार अपना गम-गलत करते देखे जाते हैं, पर उतने से भी चैन कहाँ पड़ने वाला है ! संसार-व्यवस्था में कुछ आगा-पीछा हो सकता है, किंतु प्रकृति तो अपना हंटर सदा सँभाले ही रहती है अन्यथा इतने बड़े विश्व का सुनियोजन हो ही कैसे सके !

जिसने यह संसार बनाया है, उसने यह अंकुश भी हाथ में रखा है कि जब मर्यादा का उल्लंघन चरम सीमा तक पहुँच जाए और लोग विवेक खोकर अनाचार अपनाने पर ही उतारू हो जाएँ तो उनकी खोज-खबर ली जाए; काबू में लाने के लिए कठोरता भी अपनाई जाए; उलटी चाल चलने वाले को कड़ाई अपनाकर सीधा चलने के लिए बाध्य किया जाए । इन दिनों ऐसा ही हो रहा है । प्रस्तुत विपत्तियों को देखते हुए लोगों को यह समझने के लिए बाध्य किया जा रहा है कि सही रीति का परित्याग करने पर उन्हें कितनी विपरीतताओं का सामना करना पड़ सकता है । ६०० करोड़ व्यक्तियों के लिए जहाँ स्रष्टा ने समुचित साधन जुटाने की दया दिखाई है, वहाँ उन्हें यह भी करना पड़ा है कि उनके किए के लिए समुचित दंड-व्यवस्था का भी विधान हो । सर्वविदित है कि ऐसा कृत्य निर्दयतापूर्ण ही कहा जाएगा, पर व्यवस्था तो व्यवस्था ठहरी । इन दिनों बारीकी से देखने पर यह भलीभाँति समझा जा सकता है कि पिछले दिनों जो अनाचार अपनाया जाता रहा है, उसकी प्रतिक्रिया कितनी कटु और भयंकर हुई है ।

तो क्या सदा यही अपराध करने और प्रताड़ना सहने की क्रिया-प्रतिक्रिया चलती रहेगी ? बात ऐसी नहीं है । न्यायकारी की कभी ऐसी नीति नहीं रही है । वह तभी तक धमकाता है, जब तक कि उद्दंडता से बाज नहीं आया जाता । जब सुधरना आरंभ कर दिया जाता है तो उद्देश्य पूरा हो जाता है । तब सबके साथ न्याय एवं करुणा

के स्थान पर पुचकारने और प्यार करने का उपचार क्रम चलने लगता है । स्त्रष्टा का उद्देश्य तो मात्र सुव्यवस्था बनाना है । जैसे ही वह बन जाती है, वह अपनी रीति-नीति बदलने में देर नहीं लगाता ।

अगले दिनों ऐसा ही परिवर्तन होने जा रहा है । दुष्टता के बदले प्रताड़ना सहने की जब आवश्यकता नहीं रहेगी, तो वैसा बरताव भी कोई फिर क्योंकर करेगा ! जब सुधारने और समझाने-बुझाने से ही काम चलने लगे तो फिर प्रताड़ना के कटु व्यवहार का प्रयोग क्यों करना पड़ेगा ! देखा भी यह जाता है कि जब कोई ढीठपन दिखाने और अनुचित हठवादिता से भरा दुराग्रह करने लगता है तो उसको दंड का भय दिखाना और व्यवहार करना पड़ता है, पर जब वह बदलती नीति के अनुरूप सीधी राह चलना अंगीकार कर लेता है तो अभिभावक भी अपनी रीति-नीति तुरंत बदल देते हैं—जो कार्य प्यार से चले, उसके लिए दंड की प्रक्रिया क्यों अपनाई जाए !

युगसंधि के अगले दिन

समझदार और दूरदर्शी अध्यापक अपने सभी विद्यार्थियों का हित समान रूप से चाहते हैं और उज्ज्वल भविष्य की ही कामना करते हैं । इतने पर भी परिस्थितियों के अनुसार उन्हें पृथक्-पृथक् प्रकार के व्यवहार करने पड़ते हैं । उद्दंडता के प्रति नाराजी और प्रताड़ना का व्यवहार रहता है, पर जो अनुशासन में रहते तथा जिम्मेदारीपूर्वक अपना काम करते हैं, उन्हें तदनुरूप उपहार देने की भी व्यवस्था करते हैं । इन दो प्रकार के व्यवहारों में अध्यापक का कोई स्वार्थ नहीं होता वरन् हित-कामना के अनुरूप काम देने वाले तरीके ही वह अपनाता है ।

नियंता ने भी दो ऐसे ही माध्यम अपने हाथ में रखे हैं, ताकि उनके सहारे परिस्थितियों के अनुरूप व्यवहार किया और काम चलाया जा सके । पापी नरक का त्रास भोगते हैं और पुण्यात्माओं को स्वर्ग-सुख

महाकाल भी है, जो दुष्प्रवृत्तियों के प्रति प्रताड़नाओं की व्यवस्था करता है । दूसरा पक्ष है—सुखद संभावना । अनुशासन में रहने वाले, मर्यादाएँ पालने वाले और मानवोचित सत्कर्मों को अपनाने वाले सुखद संभावनाओं के पात्र होते हैं । आलंकारिक कथा-गाथाओं में उसके कई नाम दिए गए हैं—पारस, कल्पवृक्ष तो प्रसिद्ध नाम हैं ही, एक तीसरा भी है—विश्वकर्मा । इन सब नामों के मूल में उद्देश्य मात्र यही है कि कर्म का प्रतिफल मिलकर रहता है; भले ही उसमें कुछ कारणवश विलंब लग जाए ।

पिछले दो हजार वर्षों में लोगों ने, विशेषतः शक्तिशाली वर्ग ने अपनी क्षमताओं का दुरुपयोग किया है, उसे मूलतः अनीति में, उद्दंडता-दुष्टता आदि में नियोजित किया है । उसका प्रतिफल सामने है । हम में से अधिकांश शारीरिक और मानसिक त्रास सह रहे हैं । दुरुपयोग के कारण दरिद्रता का भाजन बनना पड़ता है । दुर्व्यवहार के कारण द्वेष और विग्रह बढ़ता रहता है । ईश्वरीय मर्यादाओं का उल्लंघन करने के कारण उन दैवी विपत्तियों का सामना करना पड़ रहा है, जिन्हें प्रायः पापात्मा लोग भुगतते हैं । निंदा, भर्त्सना, अप्रामाणिकता, अविश्वास आदि का भाजन और दुर्घटनाओं के शिकार प्रायः ऐसे ही लोग बनते हैं ।

जिन दिनों अनाचार का प्रचलन बढ़ जाता है, उन दिनों की परिस्थितियाँ ऐसी बन पड़ती हैं, जिन्हें कलियुग कहा जा सके । दुष्कर्म करने वाले अपने किए का दंड भुगतते हैं, पर मूकदर्शक बनकर अनीति को देखते रहने वाले, प्रतिरक्षा न करने वाले भी अपनी कर्त्तव्यहीनता, असामाजिकता एवं कायरता के कारण उसी वर्ग में आ जाते हैं; भले ही उनने प्रत्यक्ष दुष्कर्म न किए हों । ऐसी घटनाएँ घटित होती ही रहती हैं । कभी-कभी इनमें देर भी लग जाती है । आज का दूध कल दही बनता है । आज का बोया बीज कई दिनों बाद अंकुर बनता है और

पिछली दो सहस्राब्दियों में सत्ताधारियों ने, धर्मोपदेशकों ने, चतुरजनों ने, धनाध्यक्षों ने और कलाकारों ने अपने समय की धूर्तताएँ करने में कमी नहीं छोड़ी है । इस भूल के कारण अनाचार बढ़ता रहा है और उसकी प्रतिक्रिया इस प्रकार सामने आती रही है कि व्यक्ति और समाज का ढाँचा बुरी तरह लड़खड़ाने लगा है । इसी का प्रतिफल है कि सर्वत्र असंतोष और असमंजस अपने बुरे रूप में सामने आता रहा है । अगले दिनों यह स्थिति और भी भयंकर होने की संभावना है । इसी कारण सर्वत्र असंतोष, विग्रह और अनाचार की मात्रा असाधारण रूप से बढ़ रही है और असंख्य कुसंभावनाएँ एक के बाद एक उभरती चली आ रही हैं । यदि क्रम यही रहा तो अगले दिनों ऐसे दुर्दिन देखने को मिल सकते हैं, जिससे मानवीय सत्ता और महत्ता या दोनों ही संकट में पड़ी हुई दिखाई देने लगें ।

स्रष्टा संतुलन का ध्यान रखता है । वह यह सब तभी तक सहन करता है, जब तक कि खेल-खिलवाड़ की प्रतिक्रिया सहनशक्ति की मर्यादा के भीतर रहती है । जब बात आगे बढ़ जाती है तो उसे भी बड़े कदम उठाने पड़ते हैं । अस्पताल में जिस प्रकार भयंकर दुर्घटनाग्रस्त रोगी को उपचार-क्रम में सबसे आगे रखा जाता है, 'इंटेंसिव केयर' की जाती है, उसी प्रकार जहाँ अधिक भयंकर दुर्घटना की कुसंभावना रहती है, वहाँ पहले हाथ डाला जाता है ।

अन्याय करने और सहने वाले, दोनों ही पातकी माने गए हैं । अनीतिपूर्वक प्राणहरण करने वाला और अन्याय के सामने सिर झुका देने वाला समान रूप से पाप का भागीदार माना गया है । साथ ही वह भी पाप का भागीदार होता है, जो सब समझते हुए भी दूर से देखता रहता है, प्रतिरोध का प्रयास नहीं करता ।

भगवान तीनों पर ही नाराज होते हैं । बिगड़ते को बिगड़ने देना,

हैं । लोग भले ही बिगाड़ करते हों, पर भगवान् अंततः सबको सँभाल लेते हैं । बूढ़ा होने पर शरीर मर जाता है । घर वाले, कुटुंबी उसे जला देते हैं, पर भगवान् उसे नया जन्म देता है और फिर उसे हँसने-खेलने की स्थिति में पहुँचा देता है । पिछले दिनों बिगाड़ बहुत हुआ । प्रताड़ना का समय बीत चुका है । जो शेष रहा है, वह सन् १९९० से लेकर, २००० के बीच दस वर्षों में बीत जाएगा । इन दस वर्षों में महाकाल की दोहरी भूमिका संपन्न होगी । प्रसव जैसी स्थिति होगी । प्रसव-काल में एक ओर जहाँ प्रसूता को असह्य कष्ट सहना पड़ता है, वहाँ दूसरी ओर संतान प्राप्ति की सुंदर संभावना भी मन-ही-मन पुलकन उत्पन्न करती रहती है ।

युगसंधि के ये दस वर्ष ठीक ऐसे ही दोहरी भूमिकाओं से भरे हुए हैं । पिछले दो हजार वर्षों में जो अनीति चलती रही है, उसकी प्रताड़नास्वरूप अनेक कठिनाइयाँ भी इन्हीं दिनों व्यक्ति के जीवन में, समाज की व्यवस्था में तथा प्रकृति के अवांछनीय माहौल में दृष्टिगोचर होती रहेंगी । लोग अनुभव करेंगे कि पिछले दिनों जो अनुचित बरता गया है, उसका समुचित दंड मिल रहा है और सिद्ध किया जा रहा है कि भविष्य में ऐसी भूलें नहीं बरती जानी चाहिए । मनुष्य आपस में धोखेबाजी कर सकता है, पर स्त्रष्टा के नियम-विधान को झुठलाया नहीं जा सकता । स्त्रष्टा की आँखों में धूल झोंकना भी किसी के लिए संभव नहीं है । 'जैसी करनी-वैसी भरनी' का उपक्रम सदा से चलता रहा है और सदा चलता भी रहेगा । इन दिनों की कठिनाइयों को इसी दृष्टि से देखा जाना चाहिए ।

साथ ही यह भी स्मरण रखने योग्य है कि माता एक आँख जहाँ सुधार के लिए टेढ़ी रखती है, वहाँ उसकी दूसरी आँख में दुलार भी भरा रहता है । उसकी प्रताड़ना में भी यही हितकामना रहती है कि सुधरा

हुए सुख-सुविधा भरा जीवन जिए । वर्तमान युगसंधि-काल इस दोहरी प्रक्रिया का सम्मिश्रण है ।

अगले दिनों सुंदर संभावनाएँ भी अवतरित हो रही हैं । युगसंधि के इन वर्तमान वर्षों में ऐसा माहौल बन रहा है, जिसमें मनुष्य शांति और सौजन्य के मार्ग पर चलना सीखे; कर्मफल की सुनिश्चित प्रक्रिया से अवगत हो और वह करे, जो करना चाहिए; उस राह पर चले, जिस पर कि बुद्धिमान् को चलना चाहिए ।

बुद्धिसंगत प्रतिपादनों की स्वीकृति

साधारणत: जख्म भरने में देर लगती है, पर जब डॉक्टर खून बंद करने की जल्दी में होते हैं तो टाँके लगातार रक्तस्राव को जल्दी ही बंद भी कर देते हैं । गत दो हजार वर्षों की निकृष्टता को ठीक होने में भी इसी प्रकार कम समय लगना चाहिए ।

नियंता की विशेष व्यवस्था का यह भी एक चमत्कार है कि कम समय में घाव सिए और ठीक किए जा रहे हैं । इक्कीसवीं शताब्दी ऐसे ही चमत्कारों से भरी है, जिसमें देर तक भोगे जाने योग्य दंड की जगह उनकी चिह्न-पूजा करके ही किसी प्रकार सुधार कर देने का सुयोग बन गया है । हजारों वर्षों से बरती जा रही है अनीतियों को कम समय में सुधारने का अवसर मिल रहा है और उद्दंडों को वांछित दंड देने की अपेक्षा केवल डरा-धमकाकर ही सही रास्ते पर चलाने का प्रबंध बन पड़ रहा है ।

जब मनुष्य उलटा सोचता और उलटा करता है तो उसके प्रतिफल भी भयानक ही होते हैं, पर जब यथार्थता को पहचान तथा अपना लिया जाता है तो बड़ी गलती भी थोड़ी ही देर में समझ में आ जाती है और उसका समाधान भी जल्दी ही हो जाता है । बीसवीं सदी का अंत ऐसा ही है जिसमें समझदारी तेजी से वापस लौट रही है और सुधार के

जो गलती लंबे समय से चल रही है और आए दिन एक के बाद दूसरा त्रास उपस्थित कर रही है, वह इतनी जल्दी सुधर भी सकती है, इसकी आशा कम ही की जाती थी, पर सुयोग इसी को कहते हैं कि समझदारी को जल्दी ही अपना लिया गया और गलती में समय रहते सुधार कर लिया गया ।

बोया हुआ बीज ही कुछ समय में अंकुर बनकर फूटता है और बिना आवश्यक खाद-पानी लगाए, वह पौधा और फिर पेड़ बन जाता है । सद्बुद्धि का उद्भव और उपक्रम भी ऐसा ही है कि समझदारी लौट पड़ने पर कठिन दीखने वाली समस्याएँ कम समय में ही सुलझ जाती हैं । दुर्बुद्धि ही दुष्परिणाम उत्पन्न करती है, पर जब वह उलटकर सद्बुद्धि के रूप में बदल जाती है तो फिर परिस्थितियाँ सुधरने में भी देर नहीं लगती ।

लगता है, एक शताब्दी में ही उतना सुधार हो जाएगा, जितना कि सामान्य गणित-क्रम से कई शताब्दियों में होना चाहिए था । समझ में न आने पर कोई गुत्थी हल होने में बहुत समय ले सकती है, पर जब भूल का पता लग जाता है, तो उसका हल निकालने में देर नहीं लगती । इस दृष्टि से इक्कीसवीं सदी को सुधार की शताब्दी के नाम से जाना गया है ।

उलटी समझ हजार समस्याओं का एक कारण है । लोगों ने समझ लिया है कि भलमनसाहत की रीति-नीति ही उचित है और उसी को अपनाने से शांतिपूर्वक रहा जा सकता है । इन दिनों एक हवा चली है कि हर आदमी यह सोचने लगा है कि दुर्बुद्धि का परित्याग किया जाए, दुष्टता से हाथ खींचे जाएँ और रीति-नीति ऐसी अपनाई जाए, जैसी कि सज्जनों को शोभा देती है । नीतिपूर्वक किया गया थोड़ा उपार्जन भी

वैभव भी संकटों पर संकट खड़े करता जाता है । इन दिनों जहाँ भी सुना जाए, भलमनसाहत की रीति-नीति ही चर्चा का विषय बन रही है ।

उदाहरण के लिए शांतिकुंज से उभर रहा एक छोटा प्रवाह भी देखा जा सकता है । यहाँ नवयुग के अनुरूप प्रशिक्षण की ऐसी व्यवस्था बनी है, जैसी कि साधारण रीति से विपुल धनशक्ति लगाने एवं विशाल योजना बनाने पर भी बन पड़नी संभव नहीं थी । छोटे निर्माण भी ढेरों शक्ति एवं ढेरों साधन चाहते हैं; जबकि शांतिकुंज के छोटे आश्रम में दो हजार व्यक्तियों का नियमित नवयुग-प्रशिक्षण चल पड़ा है । अभी जहाँ भी विद्यालय चलते हैं, उन सभी में छात्रों को अपना भोजन-व्यय स्वयं वहन करना पड़ता है; जबकि शांतिकुंज में दो हजार शिक्षार्थी आश्रम में ही नियमित रूप से निःशुल्क भोजन प्राप्त कर रहे हैं । यह प्रबंध इसलिए किया गया है कि गरीब-अमीर के बीच किसी प्रकार का भेद-भाव न रहे । किसी निर्धन को यह शिकायत न करनी पड़े कि हमारे पास भोजन-व्यय होता तो हमें ऐसी बहुमूल्य शिक्षा से वंचित क्यों रहना पड़ता !

प्रशिक्षण प्रायः वाणीमात्र से चलता है । उससे जानकारी भर मिलती है, जो कानों के रास्ते मस्तिष्क तक पहुँचती है । कई बार वह इस कान में प्रवेश करके उस कान से बाहर निकल जाती है, पर शांतिकुंज में पाँच दिन जैसे स्वल्प समय में जो कहा, सुना और बताया जाता है, उसमें असाधारण प्राण जुड़ा होता है, इसीलिए वह इतना प्राणवान् होता है कि चिरकाल के लिए अंतराल में अपना स्थान बना लेता है और व्यावहारिक जीवन में क्रियाकलाप बनकर अपने स्थायित्व का परिचय देता रहता है ।

धार्मिक और आध्यात्मिक वक्ताओं और श्रोताओं की आजकल कमी नहीं । जहाँ थोड़ा अधिक आकर्षण होता है, वहाँ बड़ी संख्या में लोग

नहीं लगता, जिसे साथ लेकर जा सकें और जो जीवनधारा में व्यावहारिक बनकर स्थिर रह सके । अनीति और स्वार्थपरता तो लोगों को सुहाती भी है और मन की गहराई तक जम भी जाती है, पर ऐसा कदाचित् ही कहीं देखा जाता है कि कुछ समय का वैचारिक आदान-प्रदान उच्चस्तरीय होते हुए भी अपना स्थान बना सके और जड़ जमा सके । शांतिकुंज का मार्गदर्शन ही ऐसा है, जो मात्र पाँच दिन के सत्संग से पाँच वर्ष की साधना जितना प्रभाव छोड़ जाता है; साथ ही यह भी सिद्ध करता है कि सार्थक प्रशिक्षण में कितनी गहराई और ऊँचाई होनी चाहिए ।

घिसी-पिटी, रटी-रटाई व सुनी-सुनाई बातों को सुनने-समझने में लोगों को देर नहीं लगती । इन सबमें कोई विरोध का झंझट भी नहीं होता; समझने में मस्तिष्क पर दबाव भी नहीं पड़ता, किंतु समय के साथ चलने वाले युगधर्म में ऐसी अनेक बातों का सम्मिश्रण होता है, जिनमें नवीनता भी रहती है और जो विवादास्पद भी समझी जाती हैं । उन्हें स्वीकारने और हृदयंगम करने में बुद्धि पर दबाव भी बहुत पड़ता है, इसलिए देखा गया है कि लोग घिसी-पिटी बातों को ही सहजतः समझते और स्वीकारते रहे हैं, पर जिनमें तर्क, तथ्य, प्रमाण और उदाहरणों की भरमार होने पर भी पूर्वाग्रहों के साथ संगति नहीं बैठती, उनके प्रति असहमति ही व्यक्त करते रहते हैं । ऐसा अब तक कम ही हुआ है कि समय की पुकार और युगधर्म को लोगों ने बिना किसी ननु-नच के; बिना विवाद-झंझट किए स्वीकार कर लिया हो,, पर शांतिकुंज के प्रतिपादन और परामर्श ऐसे ही देखे गए हैं, जिनके प्रति आश्चर्य तो प्रकट किया गया है, पर किसी ने उन्हें यथार्थता से विपरीत ठहराया नहीं है ।

आमतौर से स्वार्थ-सिद्धि के परामर्श ही भौतिक और आध्यात्मिक क्षेत्रों में अनुकूल समझे जाते और सहज ग्राह्य होते हैं, पर जिनमें लोक-

हो, ऐसे प्रतिपादनों का विरोध या उपहास ही होता है । आश्चर्य इस बात का है कि प्रचलन का विरोध होते हुए भी युगधर्म की व्याख्या को, नए विचारों को अब सामान्य बुद्धि द्वारा ही समझा और स्वीकारा जा रहा है ।

प्रगति की दिशा में बढ़ते प्रयास

इन दिनों बुद्धिमान् वही समझा जाता है, जिसने विपुल वैभव अर्जित कर लिया हो; भले ही उसमें अवांछनीय-अनैतिक रीति-नीति का समावेश रहा हो—कहने को तो लोग सिद्धांत की बात भी कहते हैं और सभ्य-समझदार लोग उसका अनुमोदन भी करते हैं, पर व्यवहार में उसी प्रक्रिया को मान्यता मिलती है । कोई ऐसा कदाचित् ही मिलते हैं, जो न्याय और औचित्य का समर्थन भी करते हों और निजी जीवन में उसे क्रियान्वित भी कर पाते हों । नीति-निष्ठा कहने-सुनने भर की बात रह गई है । समझा जाता है कि वह व्यावहारिक नहीं है । यदि उसमें घाटा ही उठाना पड़ा, तो सर्वसाधारण की दृष्टि से बेवकूफ ही बनना पड़ेगा ।

लोगों की मान्यताओं और तर्कों के आधार पर उन्हें निरुत्तर किया गया हो, ऐसा प्रयत्न तो कइयों ने कई बार किया है, पर सफलता प्राप्त कर सकने में कदाचित् ही कोई सफल हुआ हो । इर्द-गिर्द बिखरे उदाहरणों की इतनी भरमार नजर आती है कि जमी हुई मान्यताओं को बदलना एकदम असंभव तो नहीं, पर कठिन अवश्य प्रतीत होता है । जब प्रत्यक्ष उदाहरणों में एक ही बात दीख पड़ती है कि प्रचलित मान्यताओं को बरतने वाले एक प्रकार के नफे में रहते हैं, तब यह बात तो गले ही नहीं उतरती कि सिद्धांतों को व्यवहार में भी उतारा जा सकता है ।

शांतिकुंज के द्वारा प्रस्तुत किए गए उदाहरणों द्वारा अब यह प्रतिपादित एवं सिद्ध किया जा रहा है कि यह मान्यता बहुजनों के विश्वास

उसे स्वीकार भी किया जाता है । यही कारण है कि व्यवहार में जो दीख पड़ता है, उसे भी अमान्य ठहराने के लिए असंख्यों सहमत हो जाते हैं । ऐसे लोगों का एक बड़ा समुदाय बन जाता है, जिसमें नीति-निष्ठा और समाज-निष्ठा जैसे उच्च आदर्शों को व्यावहारिक माना जाता है । उनने अपने निजी जीवन में, संपर्क परिकर में प्रयोग करके यह पाया है कि उत्कृष्टता की नीति ही वस्तुतः लाभदायक है, उसी को अपनाने से व्यक्ति अपना एवं अपनों का वास्तविक एवं स्थायी हितसाधन कर सकता है ।

विचारों की हेरा-फेरी तो लाखों लोग अक्सर करते रहते हैं । तर्क, प्रतिपादन एवं विवाद कइयों को अपनी पिछली मान्यता बदलने के लिए बाध्य कर देते हैं । वकालत का पेशा ही ऐसा है, जिसमें सामने वाले की सही बात को गलत और गलत को सही सिद्ध करने का प्रयत्न किया जाता है । उसमें से जो चतुर होते हैं, उन्हें सफलता भी मिल जाती है, पर ऐसे उदाहरण कम ही देखे गए हैं कि किन्हीं ने अपनी भूलों को समझा, स्वीकारा और तदनुसार अपनी मान्यताओं में भी परिवर्तन कर लिया हो । इस संदर्भ में शांतिकुंज के द्वारा किए गए प्रतिपादनों ने जो सफलता पाई है, उसका अपना कीर्त्तिमान् है । इन दिनों असत्य की जीत और सत्य की हार स्वीकार की जाती है । इतने पर भी समय के प्रतिकूल ऐसी सिद्धांत शैली और तर्क प्रक्रिया शांतिकुंज ने प्रस्तुत की है, जिससे लोकमान्यता में असाधारण परिवर्तन होते देखे जाते हैं ।

क्रांतियाँ वस्तुतः ऐसी ही होती हैं । उनका आधार विवाद या शास्त्रार्थ नहीं होता । बात को अंतराल की गहराई तक पहुँचाते और मान्यता स्तर तक पहुँचा देने से ही लोग उसे स्वीकार करने और जीवन-क्रम में उतारते हैं । यह कार्य आदर्शवादिता के संबंध में तो और भी कठिन है । लोग पूर्वाग्रहों के साथ इस बुरी तरह चिपके हैं कि

है । इन दिनों यही प्रचलन जड़ पकड़ रहा है और अपनी समर्थता सिद्ध कर रहा है, किंतु शांतिकुंज की विचारधारा ही है, जिसने दुराग्रहियों और मात्र लाभ की बात सोचने वालों को भी यह मानने के लिए बाध्य किया है कि विजय अंततः सत्य की ही होती है । झूठ के पैर नहीं होते । उसे किसी प्रकार जिता दिया जाए, तो भी उसे चिरस्थायी मान्यता नहीं मिलती । सच्चे हृदय से उसे स्वीकार नहीं किया जाता ।

इस दिशा में प्रयत्न तो बहुत होते रहे हैं और उन्हें किसी प्रकार सफलता-असफलता भी मिलती रही है, किंतु इस बुद्धिवादी युग में, प्रत्यक्ष प्रतिपादनों को ही मान्यता मिलने के जमाने में, शांतिकुंज की विचारधारा में प्रत्येक विचारशील को यह स्वीकारने के लिए बाध्य किया है कि मानवीय गरिमा के आदर्श अपनाए बिना और कोई मार्ग रह नहीं गया है ।

युगपरिवर्तन की यह अनौखी पद्धति है । अब तक आध्यात्मिक तथा भावनात्मक स्तर पर तो प्रभावित किया जाता रहा है, पर यह नहीं बन पड़ता कि तर्क, तथ्य और प्रमाणों समेत नवयुग की पृष्ठभूमि को बौद्धिक आधार पर प्रतिपादित किया जा सके । इस कठिन काम को शांतिकुंज ने अपने यहाँ आरंभ भी कर दिया है और उसका प्रतिफल यह देखा गया है कि असंख्यों ने अपना जीवन परिवर्तित कर लिया है— कुमार्ग पर चलने के दुराग्रह को छोड़कर सही और श्रेयस्कर मार्ग पर चलने के लिए अपने को सहमत कर लिया है । बौद्धिक प्रतिपादन ही नहीं, प्राणप्रक्रिया का समन्वय भी इस प्रक्रिया के साथ जुड़ा हुआ है ।

पाँच दिन के प्रशिक्षण में यह व्यवस्था की गई है कि वह जनजीवन पर इतनी गहरी छाप छोड़े के व्यक्ति सहमत होकर ही लौटे । यह अपने ढंग का अनोखा प्रयोग है । यही कारण है कि धर्मोपदेशकों की इस बाढ़ के जमाने में जहाँ तदनुरूप परिवर्तनों का प्रभाव स्वल्प दिखाई

प्रचलित प्रवाह की धारा के विपरीत, जहाँ यह प्रतिपादन प्रस्तुत किया गया है कि इक्कीसवीं शताब्दी नारी-विशिष्टता की अवधि है, वहाँ उसे स्वीकार करने और कराने में बहुत कठिनाई भी उठानी नहीं पड़ी है । जहाँ शिक्षा का प्रचलन है, वहाँ तो इस तथ्य को बौद्धिक आधार पर भी स्वीकार कर लिया गया है, किंतु एक अनोखा चमत्कार यह देखने को मिल रहा है कि अशिक्षित स्तर के नारी-समुदाय ने भी नवयुग के इस संदेश को स्वीकार कर लिया है और अनेक दबावों-अवरोधों के सामने होते हुए भी प्रगति-पथ पर चल पड़ने का निश्चय कर लिया है ।

वयस्क महिलाओं को कभी प्रौढ़शिक्षा की बात सुनकर शरम भी आती थी और वे इसके लिए तैयार नहीं होती थीं, पर अब शांतिकुंज परिकर की प्रायः आधी प्रौढ़ महिलाएँ आग्रह और रुचिपूर्वक यह सब सोचने लगी हैं । शिक्षण का प्रबंध होने पर शिक्षकों की सहायता के फलस्वरूप अब उन्होंने अध्यापन का काम भी सँभालना प्रारंभ कर दिया है । घूँघट व परदे का रिवाज तो अब इस प्रकार छूटता जा रहा है, जैसे वह पहले कभी रहा ही न हो । नारी-प्रगति की एक हवा चल पड़ी है । जहाँ दुस्साहसपूर्ण बड़े प्रयास और आग्रह भी सफल नहीं होते थे, वहाँ अब सर्वत्र निष्ठापूर्वक इस दिशा में बढ़ने की उमंग उठ रही है । इस सबको देखते हुए लगता है कि इस प्रयास के पीछे कोई अदृश्य शक्ति काम कर रही है और उस लक्ष्य की ओर ले जा रही है, जहाँ नर और नारी दोनों एक स्तर तक पहुँच कर रहेंगे ।

प्रस्तुत समस्याएँ सुलझने ही जा रही हैं

कोई समय था, जब घर-घर में अंधविश्वासों की भरमार थी । भूत-प्रेत, टोना-टोटका घर-घर में चर्चा के विषय बने रहते थे । कोई किसी पर जंतर-मंतर करा रहा है; किसी ने किसी पर जादू करा दिया

संदेह और आशंका का भय, पारस्परिक कलह और विद्वेष का कारण बना रहता था ।

कुछ धूर्तों ने इस विडंबना को अपना व्यवसाय बना लिया था । छोटी बीमारियों को किसी भूत-पलीत की करतूत मान लिया जाता था और जिस-तिस पर आरोप लगा दिया जाता था कि उसने यह टोना-टोटका कराया है । भोले लोग इन बातों पर विश्वास भी कर लेते थे और तिल का ताड़ और राई का पहाड़ बन जाता था । आए दिन परस्पर कलह, संदेह, अंधविश्वास और विग्रह खड़े होते रहते थे । झाड़-फूँक करने वाले इसी बहाने अपना अच्छाखासा धंधा चला लेते थे । जहाँ शांतिपूर्वक रहना चाहिए था और कोई कारण न होने पर दुर्भाव का कोई आधार नहीं बनना चाहिए था, वहाँ भी, छोटे-मोटे गाँवों तक में भी संदेह, अविश्वास और दुर्भाव का वातावरण बन जाता था । आग में ईंधन पड़ने पर और भी बढ़ोत्तरी होती है । कौतुकी भी मनोरंजन हेतु किन्हीं किंवदंतियों को तिल से ताड़ बना दिया करते थे और उसी बहाने किसी-न-किसी से कुछ-न-कुछ ठग लिया करते थे ।

यह अविश्वास कहाँ से उपजता था और अब न जाने कहाँ चला गया, इस पर आश्चर्य होता है । नासमझी ही बात का बतंगड़ बनाती थी । समझदारी का उद्‌भव होते ही वह सारा जाल-जंजाल इस प्रकार तिरोहित हो गया, मानो गधे के सिर पर कभी सींग उगे ही नहीं थे ।

ऐसी ही कुछ भ्रांतियाँ मनुष्य को अपने संबंध में अभी भी होती हैं । शरीर में आए दिन बीमारियाँ होती रहती हैं और उनके इलाज-उपचार के लिए नित नई औषधियों का प्रयोग होता रहता है । इतने पर भी यह विवाद बना ही रहता है कि इनमें से कौन-सी लाभदायक सिद्ध हुई और कौन-सी हानिकारक ? एक रोगी के लिए जो चिकित्सा उपयोगी हुई, वही दूसरे रोगी के उसी रोग में हानिकारक सिद्ध होती

इसीलिए होती रहती है । यह सिलसिला मुद्दतों से चल रहा है, पर अभी तक किसी एक निश्चय पर पहुँचना संभव न हो सका ।

इतने दिनों बाद अब एक सही निष्कर्ष हाथ लगा है कि मन का शरीर के प्रत्येक पुरजे पर अधिकार है । यदि मन को नियंत्रित और सन्मार्गगामी बनाया जा सके तो शरीर के सभी कल-पुरजे अपना-अपना काम सही रीति से करने लगते हैं और बीमारियों की जड़ कट जाती है । इसके विपरीत यदि चिंतन का क्रम उलटा चलता रहे और कुविचार मस्तिष्क पर छाए रहें तो शरीर में कोई स्थानीय व्यथा न होने पर भी कल्पनाजन्य अनेक अव्यवस्थाएँ उठ खड़ी होती हैं और दवाओं में सिर्फ वही थोड़ा-बहुत काम करती हैं, जिन पर कि विश्वास गहरा होता हैं । इससे प्रतीत होता है कि बीमारियों की जड़ तो मन के भीतर रहती है, शरीर में तो उनका आभास भर होता है । यदि सरल, सौम्य और सद्भावपूर्ण विचार बने रहें तो बीमारियों का जो प्रकोप आए दिन बना रहता है, उनका अस्तित्व ही न रहे । यह तथ्य यदि समय रहते लोगों को पहले ही अवगत हो गया होता तो हर कोई अपना इलाज आप कर लेता और उसके लिए जहाँ-तहाँ भटकने और निराश रहने की आवश्यकता न पड़ती ।

यही बात खिन्नता व उद्विग्नता के संबंध में भी है । लोग प्रतिकूल परिस्थितियों को चिंताओं, आशंकाओं और प्रतिकूलताओं का कारण मानते हैं, पर यह भूल जाते हैं कि उन्हीं परिस्थितियों में तथा उतने ही साधनों में अनेक लोग प्रसन्न रहते और संतोषपूर्वक जीवनयापन करते हैं । प्रतिकूलताएँ अनुभव करने में चित्त की प्रवृत्तियाँ ही प्रधान भूमिका निभाती हैं । परिस्थितियों को बदलने के लिए भाग-दौड़ करने की अपेक्षा यदि मन के बेतुकेपन की रीति-नीति को ही सुधार लिया गया होता तो हर स्थिति को अपने अनुकूल बना लेने में कोई बड़ी कठिनाई न पड़ती ।

अभ्यास में न घुस पड़ी होती तो सरलता और सज्जनता का सौम्य जीवन जीते हुए हर व्यक्ति अपनी वर्तमान परिस्थितियों को सुधार लेता । गलती सुधर जाने पर, जो प्रतिकूलताएँ चारों ओर घिरी दीखती हैं, उनमें से एक भी घिरी न दीख पड़ती ।

इंद्रियों का दुरुपयोग कठिनाइयों का निमित्त कारण बनता है । यदि इस मोटे तथ्य को लोगों ने हृदयंगम कर लिया होता तो इच्छा-आकांक्षाओं को पूरा करने की दौड़-धूप न करनी पड़ती, मात्र संयम-साधना से ही अधिकांश समस्याएँ सुलझ गई होतीं । यदि स्वादेंद्रिय पर काबू रखा जाता तो अनावश्यक व अभक्ष्य खाने की ललक न उठती और पेट के संतुलित बने रहने पर पाचन-तंत्र में कोई व्यतिक्रम खड़ा न होता । कामुकता मानसिक विकार है । लोग उसे शारीरिक माँग या आवश्यकता मानते हैं, जो कि सही नहीं है—यदि इस मोटे सिद्धांत को समझ लिया जाए, तो फिर कामुकताजन्य जो अनेक अनाचार दीख पड़ते हैं, उनमें से एक भी कहीं दीख न पड़ता और नर-नारी मिल-जुलकर उन उपयोगी और महत्त्वपूर्ण कामों में लगे होते, जिससे सुविधाओं की कमी न रहती और जिन अनौचित्यों का आए दिन सामना करना पड़ता है, उनसे कोई भी किसी को हैरान-परेशान न कर रहा होता । आँख, कान, नाक, इंद्रियों में से जिन्हें क्रियाशील कहा जाता है, यदि उनके प्रयोग से पहले ही यह विचार कर लिया जाता कि औचित्य और अनौचित्य में क्या अंतर होता है और क्या अपनाने योग्य है, क्या अपनाने योग्य नहीं तो मस्तिष्क द्वारा उलटी दिशा अपनाने और उसके फलस्वरूप कोई भी अहितकर प्रयास करने के लिए कदम न बढ़ता । फिर अच्छे-खासे सुख-शांति भरे जीवन को विद्रूप बनाने की किसी को भी आवश्यकता न पड़ती ।

उपलब्ध वस्तुओं को ठीक प्रकार प्रयुक्त करना मनुष्य की बुद्धिमानी का प्रथम चिह्न है । जीवनचर्या के साथ जुड़े हुए मन को यदि सबसे

से ही ध्यान रखा गया होता तो सदा-सर्वदा हर किसी को हँसती-हँसाती जिंदगी जीने का अवसर मिला होता । जिन विग्रहों और अनाचारों का आए दिन सामना करना पड़ता है, उनमें से एक भी हैरान करने के लिए सामने न आते । इस संसार में ऐसी एक भी कठिनाई नहीं है, जिसका बुद्धिमत्ता अपनाने पर समाधान न खोजा और निवारण-निराकरण का मार्ग न निकाला जा सके । यह संसार भगवान् का सुरम्य उद्यान है । इसमें हर दिशा में हर प्रकार की सुविधाएँ ही भरी पड़ी हैं । जहाँ कहीं प्रतिकूलताएँ दीख पड़ती हैं, वहाँ समझना चाहिए कि चिंतन में कहीं कोई गड़बड़ी पड़ गई है । यदि उसी खोट को ढूँढ़ लिया जाए तो वह कारण सहज ही समझ में आ सकता है, जो जीवन के सुख भरे पथ को कंटकमय बनाता है । अगले दिनों मनुष्य अपने चिंतन को सही करने जा रहा है और साथ ही उन सभी समस्याओं से पीछा भी छुड़ाने की तैयारी कर रहा है, जो आज हैरानी का वातावरण बनाए हुए हैं ।

युगांतरीय चेतना का आलोक-विस्तार

छोटा बीज कुछ ही दिनों में बड़ा वृक्ष बन जाता है । शिलान्यास छोटे रूप में ही होता है, पर समयानुसार वह भव्य भवन बनकर खड़ा हो जाता है । यह युगसंधि है । अभी जो छोटा दीख रहा है, वह अगले दिनों विशालकाय ऐसा बोधिवृक्ष बन जाएगा, जिसके नीचे तपस्वी सिद्धार्थ को बोध हुआ, वे बुद्ध बने और जिसकी शाखाएँ देश-विदेशों में दिव्य बोध का संदेश देने पहुँचती रहीं ।

बीज बोने का समय थोड़ा ही होता है । वृक्ष का अस्तित्व लंबे समय तक स्थिर रहता है । सन् १९९० से लेकर सन् २००० तक के दस वर्ष जोतने, बोने, उगाने, खाद-पानी डालने और रखवाली करने के हैं । इक्कीसवीं सदी से वातावरण बदल जाएगा; साथ ही परिस्थितियों में भी भारी हेर-फेर होगा । इस सभी के विस्तार में एक शताब्दी ही

परिवर्तन बन पड़ेंगे, जिन्हें देखकर जनसाधारण आश्चर्य में पड़ जाएँगे । सन् १९०० में जो परिस्थितियाँ थीं, वे तेजी से बदलीं और क्या-से-क्या हो गया, यह प्रत्येक सूक्ष्मदर्शी जानता है । जिनकी दृष्टि मोटी है, उनके लिए तो जमीन-आसमान सदा एक से रहते हैं । अगले दिन इतने आश्चर्यजनक परिवर्तनों से भरे होंगे, जिन्हें देखकर प्रज्ञावानों को यही विदित होगा कि युग बदल गया; अनुभव होगा कि मनुष्य का शरीर तो पहले जैसा ही है, किंतु उसका मानस, चिंतन व दृष्टिकोण असाधारण रूप से बदल गया और समय लगभग ऐसा आ गया, जिसे सतयुग की वापसी कहा जाए तो अत्युक्ति न होगी ।

प्राचीनकाल में समय की गति धीमी थी, परिवर्तन क्रमिक गति से होते थे, पर अबकी बार प्रवाह तूफानी गति से आया है और दो हजार वर्ष में हो सकने वाला कार्य, मात्र एक सौ वर्ष में पूरा होने जा रहा है । नई शताब्दी नए परिवर्तन लेकर तेजी से आ रही है ।

सन् १९९० से २००० तक का समय भारी उथल-पुथल का है । उसके लिए मानवीय प्रयास पर्याप्त न होंगे । दैवी शक्ति की इसमें बड़ी भूमिका होगी । इसी की इन दिनों ऐसी तैयारी चल रहीं है, जिसे अभूतपूर्व कहा जा सके ।

नर-पशु, नर-कीटक और नर-पिशाच स्तर का जीवनयापन करने वालों में से ही बड़ी संख्या में ऐसे इन्हीं दिनों निकल पड़ेंगे, जिन्हें नर-रत्न कहा जा सके । इन्हीं को दूसरा नाम दिव्य प्रतिभा-संपन्न भी दिया जा सकता है । इनका चिंतन, चरित्र और व्यवहार ऐसा होगा, जिसका प्रभाव असंख्यों को प्रभावित करेगा । इसका शुभारंभ शांतिकुंज से हुआ है ।

युगसंधि महापुरश्चरण का श्रीगणेश यहाँ से हुआ है । इसका मोटा आध्यात्मिक स्वरूप जप, यज्ञ और ध्यान होगा । इसे उस प्रक्रिया से जुड़ने वाले संपन्न करेंगे; साथ-ही-साथ पाँच-पाँच दिन के दिव्य

ही काम करती हैं । इन्हीं के माध्यम से जानकारियाँ मस्तिष्क तक पहुँचती हैं, वहाँ कुछ समय ठहरकर तिरोहित हो जाती हैं, पर उपर्युक्त पाँच दिवसीय शिक्षण-सत्र ऐसे होंगे, जिनमें मात्र शब्दों का ही आदान-प्रदान नहीं होगा वरन् प्राणशक्ति भी जुड़ी होगी । उसका प्रभाव चिरकाल तक स्थिर रहेगा और अपनी विशिष्टता का ऐसा परिचय देगा, जिसे चमत्कारी या अद्‌भुत् कहा जा सके ।

सन् १९९० के वसंत पर्व से यह सघन शिक्षण आरंभ होगा और वह सन् २००० तक चलेगा । इन दस वर्षों को दो खंडों में काट दिया है । संकल्प है कि सन् १९९५ की वसंत पंचमी के दिन एक लाख दीप-कुंडों का यज्ञ-आयोजन उन सभी स्थानों पर होगा, जहाँ प्रज्ञा पीठें विनिर्मित और प्रज्ञाकेंद्र संस्थापित हैं । किस स्थान पर कितने बड़े आयोजन होंगे, इसका निर्धारण करने की प्रक्रिया अभी से आरंभ हो गई है । प्रथम सोपान सन् १९९५ में और दूसरा सोपान वसंत २००० में संपन्न होगा । स्थान वे रहेंगे, जहाँ अभी से निश्चय होते जाएँगे ।

इस महायज्ञ के यजमान वे होंगे, जो अगले पाँच वर्षों में नियमित रूप से साप्ताहिक सत्संगों का आयोजन करते रहेंगे । आयोजनों में दीपयज्ञ, सहगान-कीर्तन, नियमित प्रवचन और युगसाहित्य का स्वाध्याय चलता रहेगा । स्वाध्याय में जो पढ़ नहीं सकेंगे, वे दूसरों से पढ़वाकर सुन लिया करेंगे । इस प्रकार की प्रक्रिया नियमित रूप से चलती रहेगी ।

अपेक्षा की गई है कि सन् १९९५ तक एक लाख यज्ञ हो चुकेंगे और शेष १ लाख सन् २००० तक पूरे होंगे—कुल दो करोड़ देव-मानव इनमें सम्मिलित होंगे । यह तो आयोजनों की चर्चा हुई । इन आयोजनों में सम्मिलित होने वाले अपने-अपने संपर्क-क्षेत्र में इसी प्रक्रिया को अग्रगामी करेंगे और आशा की जाती है कि इन दस वर्षों में सभी शिक्षितों तक नवयुग का संदेश पहुँच जाएगा । इस प्रयोजन के लिए युगसाहित्य

वाणी और लेखनी के माध्यम से अगले दस वर्षों में जो प्रचार-कार्य होता रहेगा, उसका आलोक युगांतरीय चेतना विश्व के कोने-कोने में पहुँचा देगी, ऐसा निश्चय और संकल्प इन्हीं दिनों किया गया है ।

अगले दिनों जो करना है

इस जीवनरूपी दुर्लभ ब्रह्मकमल के प्रायः ८० फूल खिल चुके हैं । संजीवनी बूटी के एक-से-एक तरंगित और शोभायमान पुष्पों के खिलते रहने का एक महत्त्वपूर्ण अध्याय पूरा हो चला । गहराई से पर्यवेक्षण करने पर प्रतीत होता है कि जो गुजर गया, सो ऐसा रहा, जिस पर गर्व-गौरव और आनंद-उल्लास अनुभव किया जा सके । जो काम सौंपा गया था; जिस प्रयोजन के लिए भेजा गया था, वह क्रमबद्ध रूप से चलता रहा और दुलार बरसने वाले स्तर के साथ पूरा होता रहा । इसे संतोष की बात ही कहा जा सकता है । बदलते युग का बीजारोपण करने से लेकर, बीजांकुर आने, खाद-पानी देने और नयनाभिराम हरियाली की रखवाली करते रहने का अवसर मिलता रहा । इसे ईश्वर की महती अनुकंपा ही कहना चाहिए ।

सूत्र-संचालक के इस जीवन का प्रथम अध्याय पूरा हुआ । यह दृश्यमान स्वरूप था । जिनने देखा, उनने इसे एक शब्द में ही प्रकट कर दिया है कि 'जो बोया-सो काटा' का सिद्धांत अपनाया गया । समाज रूपी खेत में बोए गए सत्प्रवृत्ति के बीज, सूत्र-संचालक के जीवन में उगे, बढ़े और विशाल उद्यान के रूप में सभी के सामने आए हैं । इस जीवनचर्या द्वारा यह सभी को बताया गया कि यही आदर्श दूसरों के लिए भी अनुकरणीय है । इस मार्ग पर चलना सरल भी है और सुखद भी । पथ-भ्रष्ट न हुआ जाए तो यह मार्ग अति मंगलमय एवं प्रेरणाप्रद है । आध्यात्मिक जीवन को सदा से कठिन माना जाता रहा है, पर इस जीवन-साधना द्वारा यह सिद्ध किया जाता रहा कि यह सभी के लिए

पिछले दिनों दृश्य काया से, परोक्ष सत्ता के मार्गदर्शन में जो कर्तृत्व बन पड़े, वे सबके सामने हैं । साधना द्वारा आत्मपरिमार्जन, युगसाहित्य का सृजन, लाखों का संगठन, समर्थ सहायकों का विकास, लोकसेवियों का निर्माण, युगसंधि का शिलान्यास व विचारक्रांति का सूत्र-संचालन जैसे कितने ही विलक्षण कार्य लोगों ने अपनी आँखों से देखे हैं । यह सब काया द्वारा बन पड़ी गतिविधियों का संक्षिप्त परिचय है । जो जानकारी परिजनों को नहीं है, वह समय आने पर विदित हो जाएगी । उसे इस कारण उजागर नहीं होने दिया गया है कि लोगों को पीछे खोजने के लिए भी तो कुछ बाकी रहना चाहिए ।

अब जीवन का दूसरा अध्याय प्रारंभ होता है । अब इसमें जो होना है, उसे और भी अधिक महत्त्वपूर्ण व मूल्यवान् माना जा सकता है । स्थूल के अतिरिक्त सूक्ष्म व कारण-शरीरों का अस्तित्व अध्यात्म-विज्ञानी बताते रहे हैं । उन्हें स्थूल-शरीर की तुलना में असंख्य गुना अधिक शक्तिशाली कहा गया है । उन्हीं का प्रयोग अब एक शताब्दी तक किया जाना है । यह कार्य सन् १९९० के वसंतपर्व से आरंभ किया जा रहा है । यहाँ से लेकर सन् २००० तक दस वर्ष युगसंधि का समय है । परिजन देखेंगे कि इस अवधि में जो गतिविधियाँ चलेंगी, उनका केंद्र 'शांतिकुंज, हरिद्वार' होगा ।

युगचेतना का विस्तार इन्हीं दिनों हो रहा है । भारत के कोने-कोने में और विदेशों में भारतीय मूल के विशिष्टजनों के माध्यम से युगसंधि का स्वरूप व्यापक बनाया जाएगा । इसके लिए जिस आध्यात्मिक साधना की, रचनात्मक क्रियाकलाप की आवश्यकता पड़ेगी, उनका विस्तार भी इन्हीं दिनों होता रहेगा । यह कार्य सूक्ष्म-शरीर द्वारा संपन्न होगा । स्थूल-शरीर तो इससे पहले ही साथ छोड़ चुका होगा । कारण स्पष्ट

जबकि सूक्ष्म-शरीर बिना किसी झंझट के व्यापक क्षेत्र में अपना कार्य द्रुतगति से करता-कराता रह सकता है ।

कारण-शरीर की शक्ति बड़ी है । उसका कार्यक्षेत्र भी बड़ा है । अदृश्य जगत् में जो घटित होने जा रहा है, उसमें हस्तक्षेप करने की सामर्थ्य भी कारण-शरीर में होती है । इक्कीसवीं सदी में कई अनर्थों से जूझने की आवश्यकता पड़ेगी और कई ऐसे प्रयास संपन्न करने पड़ेंगे, जो न स्थूल-शरीर से बन पड़ सकते हैं और न उन्हें सूक्ष्म-शरीर ही कर सकता है । ब्राह्मीचेतना से जुड़कर दिव्य कारण-शरीर ही उन सब कार्यों को क्रियान्वित करता है, जिन्हें प्रायः अद्भुत् एवं अलौकिक कहा जाता है ।

युगपरिवर्तन की प्रस्तुत वेला में इस महान् कार्य के लिए जो सुविधाएँ सामने आएँगी, उनका उद्भव अदृश्य जगत् से होगा । अदृश्य से ही दृश्य गतिविधियाँ प्रकट होंगी । जो कुछ भी किया जाना है, वह ब्राह्मीचेतना से जुड़ा कारण-शरीर ही संपन्न करेगा । इक्कीसवीं सदी में ऐसे ही परिवर्तन होंगे, पर यह प्रतीत न होगा कि यह कैसे हो रहे हैं और कौन कर रहा है ? चूँकि पिछले दो हजार वर्षों की गड़बड़ियाँ अगले सौ वर्षों में ही ठीक होनी हैं, इसलिए सुधार की गतिविधियाँ भी अपनी चरमसीमा पर होंगी । इसे सामान्य साधन और प्रयासों से नहीं किया जा सकता । इसके लिए विशिष्ट प्रयास अनिवार्य हैं । यही कारण है कि सूत्र-संचालक ने प्रत्यक्ष मिलने-जुलने का क्रम बंद कर कारण-शरीर में संव्याप्त सत्ता द्वारा वह सब संपन्न कर डालने का निश्चय वसंत से कर लिया है । वैज्ञानिक या दार्शनिक जब कोई विशेष महत्त्वपूर्ण बौद्धिक कार्य करते हैं तो अपने स्थूल संपर्क को समेट लेते हैं । चेतना-स्तर पर किए जाने वाले महत्त्वपूर्ण कार्यों के लिए स्थूल संपर्क समेट लेना और भी अधिक आवश्यक हो जाता है; इसीलिए ऐसा निश्चय करना पड़

युग-अवतरण की प्रक्रिया

जिसकी अहंता कुएँ के मेढक या गूलर के फल के भुनगे जैसी हो; जिनके लिए अपना स्वार्थ, विलास और अहंकार ही सब कुछ है, समझना चाहिए कि उनकी केवल काय-संरचना ही मनुष्य जैसी है । पेट और प्रजनन का निर्वाह तो हर कृमि-कीटक को आता है । उसी सीमा में जो आबद्ध है, उसे मनुष्य नाम से भले ही जाना जाए, पर है वह वस्तुतः कृमि-कीटक या नर-पशु जैसा ही । जब कभी ऐसे लोगों का बाहुल्य होता है, तब समझना चाहिए कि नरक का साम्राज्य छा गया—कलियुग आ गया ।

इन दिनों सुविधा-साधनों की कमी नहीं, पर मनुष्य-शरीर में रहने वाली चेतना का स्तर गया-बीता हो गया है । ऐसा जब कभी होगा, तब समझना चाहिए कि व्यक्ति और समाज पर संकट एवं पतन-पराभव का दौर चढ़ने ही वाला है । इन दिनों जो अगणित समस्याएँ हर क्षेत्र में दीख पड़ती हैं, उनका एक ही कारण है कि मानवीय काया पर श्मशान के प्रेत ने आधिपत्य जमा लिया है; उसने मर्यादाओं का उल्लंघन और वर्जनाओं का अभ्यास आरंभ कर दिया है । वर्तमान परिस्थितियों में दीनता-हीनता का एक ही कारण है—हम जैसा बोते हैं, वैसा ही काटते भी तो हैं ।

वर्तमान परिस्थितियों का विश्लेषण इस एक वाक्य में ही किया जा सकता है कि जनसमुदाय का एक बड़ा भाग भ्रष्ट-चिंतन और दुष्ट-आचरण को अपनाने का अभ्यस्त हो गया है । उसे उसी में स्वार्थ सधता दीखता है, जिसमें वासना और तृष्णा की पूर्ति का साधन बनते दीखता है । उस ओर ध्यान भी नहीं जाता, जिसके लिए यह सुर-दुर्लभ शरीर मिला है । यही है वह उलटी चाल, जिसे अपनाकर लोग स्वयं भ्रमित होते, कष्ट पाते और दूसरों को गिराने का पापपुंज सिर पर लादते जाते हैं । यह

समय बदल रहा है । रात्रि का पलायन और प्रभात का उदय हो रहा है । उसका निमित्त कारण एक ही बनने जा रहा है कि लोग अपने को बदलेंगे । स्वभाव में परिवर्तन करेंगे । गिरने और गिराने के स्थान पर उठने और उठाने की रीति-नीति अपनाएँगे और पतन के स्थान पर उत्थान का मार्ग ग्रहण करेंगे । यही नवयुग है; यही सतयुग है, जो अब निकट से निकटतम आता जा रहा है ।

भगवान् अपना कार्य किन्हीं महामानवों एवं देवदूतों के माध्यम से कराते रहे हैं । इन दिनों भी ऐसा ही हो रहा है । मनुष्य-शरीर में प्रतिभावान् देवदूत प्रकट होने जा रहे हैं । इनकी पहचान एक ही होगी कि वे अपने समय का अधिकांश भाग प्रभु की प्रेरणा के लिए लगाएँगे । शरीर कुछ-न-कुछ साधन उपार्जन करता है । नर-पशु उसे स्वयं ही खर्चते हैं, पर देवमानवों की प्रकृति यह होती है कि अपने उपार्जन में से न्यूनतम अपने लिए खर्च करें और शेष को परमार्थ-प्रयोजनों के लिए लगा दें । नवयुग का प्रधान स्वरूप है—लोकमानस का परिष्कार । यही अपने समय की साधना, पुण्यपरमार्थ और धर्मधारणा है । इसके लिए जो जितना समय और साधन लगाता दीख पड़े, समझना चाहिए कि भगवान् उसी के माध्यम से अपना अभीष्ट पुरुषार्थ पूरा करा रहे हैं ।

नवयुग का आगमन-अवतरण निकट है । उसे स्रष्टा किसके माध्यम से पूरा करने जा रहे हैं, यह जानना हो तो समझना चाहिए कि युग-अवतरण का श्रेय उन्हीं को उपहारस्वरूप भगवान् दे रहे हैं, जो उनके काम में लगे हैं । ऐसे लोगों को ही बड़भागी और सच्चा भगवद्-भक्त मानना चाहिए ।

युग निर्माण मिशन-संक्षिप्त परिचय

उद्देश्य : मनुष्य में देवत्व का उदय एवं धरती पर स्वर्ग का अवतरण। व्यक्ति निर्माण, परिवार निर्माण, समाज निर्माण। विचारक्रांति, नैतिक क्रांति, धार्मिक क्रांति एवं सामाजिक क्रांति द्वारा जनमानस का भावनात्मक परिष्कार।

गठन : नव निर्माण के लिए तत्पर नित्य समय दान और अंश दान करने वाले लाखों कर्मनिष्ठों का पारिवारिक संगठन। प्रचारात्मक, रचनात्मक और सुधारात्मक कार्यक्रमों द्वारा मानवीय गरिमा को उभारने वाली गतिविधियों में संलग्न समुदाय।

आधार : सदस्यों का दैनिक श्रमदान एवं अंशदान। नित्य ५० पैसा और २ घण्टे समय का नियमित अनुदान। इसी सामर्थ्य के बलबूते अनेकों महत्त्वपूर्ण गतिविधियों का गत ५० वर्षों से संचालन।

प्रमुख संस्थान : (१) गायत्री तपोभूमि, मथुरा (२) अखण्ड ज्योति कार्यालय, मथुरा (३) गायत्री शक्तिपीठ, आंवलखेड़ा, आगरा (४) शांतिकुंज, हरिद्वार (५) ब्रह्मवर्चस्, हरिद्वार। भारत एवं विदेश में लगभग ४००० शक्तिपीठ, प्रज्ञापीठ एवं गायत्री परिवार की शाखाओं द्वारा प्रचार प्रसार।

प्रकाशन : युग निर्माण योजना (हिन्दी मासिक), युग शक्ति गायत्री (गुजराती मासिक), अखण्ड ज्योति मासिक एवं अन्य कई पत्रिकाएँ भारत की विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित। विभिन्न विषयों पर पूज्य गुरुदेव द्वारा रचित लगभग ५०० पुस्तकों का प्रकाशन देश की विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं में।

गतिविधियाँ एवं प्रचार : धर्म तंत्र से लोकशिक्षण, अग्नि साक्षी में सत्प्रवृत्तियाँ अपनाने के संकल्प, युग निर्माण विद्यालय, मथुरा, नौ दिवसीय साधना सत्र एवं एक मासीय **युग शिल्पी सत्रों** का नियमित आयोजन। टोलियों द्वारा देश-विदेश में मिशन का प्रचार-प्रसार।

कार्यक्षेत्र : समस्त भारतवर्ष एवं विश्व।